12

भारत के संविधान का निर्माण

YNF91H

पिछली कक्षा में हमने लोकतंत्र के मूल सिद्धांतों व मूल्यों तथा उसकी शुरुआत और विस्तार के विषय में पढ़ा था। जब भारतीयों ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आज़ादी की लड़ाई लड़ी तो हमने लोकतांत्रिक मूल्यों को अपना आधार बनाया। सन् 1947 में आज़ादी मिली तो हमने इन्हीं मूल्यों के अन्तर्गत देश का ढाँचा तैयार करने का कार्य प्रारंभ किया। इस प्रक्रिया को संविधान निर्माण की प्रक्रिया कहते हैं।

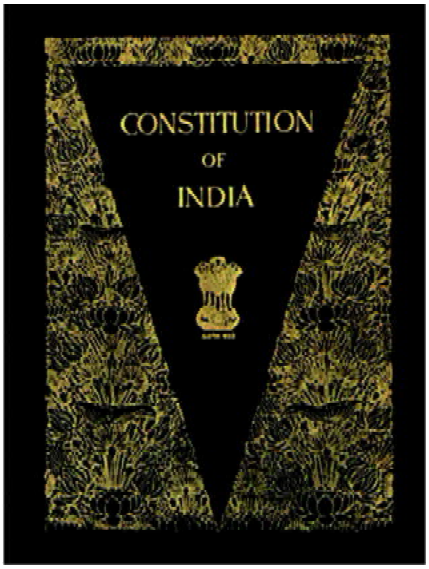

चित्र 12.1 भारत के संविधान का मुखपृष्ठ

प्रत्येक देश का अपना एक संविधान होता है जो उस देश की शासन व्यवस्था के आधारभूत नियमों और सिद्धांतों का एक संग्रह होता है। हर देश अपनी आवश्यकताओं व परिस्थितियों के अनुसार अपने संविधान का निर्माण करता है। संविधान आधारभूत नियमों का संग्रह मात्र नहीं है, वरन् उस राष्ट्र के मूल उद्देश्यों व प्राथमिकताओं का खाका एवं शासन तंत्र को गठित करने की व्यवस्था और उसकी सीमाओं व मर्यादाओं को निर्धारित करने वाला दस्तावेज़ है जिसका उपयोग करके देश की सरकार जनता की समस्याओं का समाधान करती है।

कक्षा 8वीं से भारतीय संविधान के विषय में स्मरण कीजिए और निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

भारत के संविधान का निर्माण ..... सभा द्वारा किया गया। (संसद / विधान सभा / संविधान सभा)

भारत का संविधान दिनाँक ..... से लागू हुआ। (15 अगस्त 1947 / 26 जनवरी 1950 / 30 जनवरी 1948)

हमारे संविधान के अनुसार भारत एक ..... देश है। (लोकतांत्रिक / राजशाही / सैन्यशासित)

1.1 संविधान की आवश्यकता क्यों है?

YNJAYN

अपने सीमित अर्थ में, संविधान मूलभूत नियमों या प्रावधानों का एक ऐसा समूह है जो राज्य के गठन और उसके तहत शासन प्रणाली को निर्धारित करता है। एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में माना जाता है कि समाज के लोग मिलकर अपने हितों के लिए राज्य का निर्माण करते हैं और वे अपने जीवन को संचालित करने के कुछ अधिकारों

राज्य

राजनीति विज्ञान में राज्य किसे कहते हैं?

वह इकाई जिसके पास एक निश्चित भू–भाग, जनसंख्या, सरकार तथा संप्रभुता (स्वतंत्र) हो, उसे राज्य कहते हैं। जैसे भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका। क्या छत्तीसगढ़ या मध्य प्रदेश राज्य हैं? अपने उत्तर की पुष्टि तर्क के साथ कीजिए।

को राज्य को सौंप देते हैं ताकि सामूहिक जीवन सुचारू रूप से चल सके। राज्य को गठित करते समय वे उसे कुछ नियमों में बाँधते हैं ताकि वह लोगों के अधिकारों का हनन न करे और उनके हितों में काम करे। इन्हीं नियमों को हम संविधान कहते हैं। संविधान के माध्यम से यह तय किया जाता है कि समाज में निर्णय लेने की शक्ति किसके पास हो और सरकार कैसे गठित हो? उसका स्वरूप कैसा हो? संविधान का कार्य है सरकार द्वारा नागरिकों पर लागू किए जाने वाले अधिनियमों या कानूनों की सीमा निश्चित करना। ये सीमाएँ ऐसी होती हैं कि सरकार भी उनका उल्लंघन न करे, जैसे मौलिक अधिकार। संविधान परिवर्तनशील है जिसे बदलते परिस्थितियों के अनुरूप बदला जा सकता है किन्तु संविधान में परिवर्तन की प्रक्रिया और परिवर्तन की सीमा भी निर्धारित होती है। वह शासन को ऐसी क्षमता प्रदान करता है जिससे वह जनता की विभिन्न आकांक्षाओं को पूर्ण कर सके और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना हेतु उचित परिस्थितियाँ, वातावरण आदि का विकास कर सके।

व्यापक अर्थ में संविधान किसी राष्ट्र के उद्देश्यों व आधारभूत मूल्यों को निरूपित करता है। समाज के लोग मिलकर क्या करना चाहते हैं, वे क्यों एक साथ रहना चाहते हैं और उनके द्वारा बनाए गए राज्य को किन मूल्यों को लेकर चलना है– यह सब संविधान में अंकित होता है। उदाहरण के लिए, भारत के संविधान की उद्देशिका में कहा गया है कि हमारा लक्ष्य सबके लिए समता, न्याय, स्वतंत्रता और भाईचारा सुनिश्चित करना है – इसके लिए हमने ऐसे राज्य का गठन किया है जो लोकतांत्रिक हो, धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी हो और किसी प्रकार के निर्णय लेने के लिए किसी बाहरी ताकत पर निर्भर न हो।

जब द्वितीय विश्व युद्ध की तबाही के बाद जापान में नया संविधान बना तो उसमें कहा गया कि जापान विश्व शान्ति के लिए और संपूर्ण विश्व में हर प्रकार की गुलामी, अत्याचार, असहिष्णुता, डर, अभाव आदि मिटाने के लिए प्रयास करेगा। इन उद्देश्यों को जापान का मुख्य राष्ट्रीय लक्ष्य माना गया। इसी तरह मई 2008 में नेपाल में जब राजाओं का शासन समाप्त करके लोकतंत्र स्थापित हुआ तो वहाँ भी नया संविधान बनाने की कवायद प्रारंभ हुई और संविधान सभा का गठन किया गया। नया संविधान कैसा हो इसे लेकर नेपाल की विभिन्न पार्टियों, समुदायों व क्षेत्रीय समुदायों के बीच गहन वाद–विवाद और विचार–विमर्श के बाद 2015 में एक संविधान प्रस्तावित किया गया। नेपाल के सभी लोग यह चाहते थे कि देश में सामन्तवादी राजशाही का अत्याचार और एक केन्द्रीय शासन प्रणाली जो स्थानीय समूहों की आकांक्षाओं की अनदेखी करे, हमेशा के लिए खत्म हो। संविधान निर्माण के दौरान नेपाल में रहने वाले अनेकानेक छोटे समुदाय के लोगों ने यह संदेह जताया कि उनके हितों की रक्षा नए नेपाल में होगी या नहीं। इस कारण नए संविधान में हर प्रकार की विभिन्नता के संरक्षण, सबके बीच समरसता व सहनशीलता विकसित करने, सभी प्रकार के अत्याचार व भेदभाव को मिटाने और एकीकृत केन्द्रीय राज्य की जगह स्थानीय व क्षेत्रीय स्वशासन स्थापित करने पर विशेष ध्यान दिया गया है।

अगर आपको अपनी शाला के लिए एक संविधान बनाना हो तो किस प्रक्रिया से बनाएँगे? अपने स्कूल के लिए क्या उद्देश्य रखेंगे?

1.1.2 भारत का संविधान निर्माण और ऐतिहासिक संदर्भ

भारत में संविधान निर्माण की प्रक्रिया का इतिहास बहुत लंबा है। संविधान की मूल भावना है कानून आधारित शासन जो किसी की मनमर्ज़ी से नहीं वरन् नियम–कानूनों के आधार पर चले। भारत के लिए सबसे पहले इस तरह का कानून 1772–73 में ब्रिटेन के संसद ने पारित किया जिसे रेग्युलेटिंग एक्ट कहते हैं। तब भारत के कई प्रांतों पर इंग्लिश ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन स्थापित हो चुका था। इसमें ईस्ट इंडिया कंपनी भारत का शासन कैसे करेगी और ब्रिटिश संसद के प्रति कैसे उत्तरदायी रहेगी? आदि बातों का विवरण था। उन्नीसवीं सदी के अंत में भारतीयों को नगरनिगम आदि में चुनाव के द्वारा सीमित भूमिका दी गई। सन् 1885 से स्वतंत्रता आंदोलन में लगातार यह माँग उठाई गई कि शासन में भारतीयों की भूमिका बढ़ाई जाए। इसके चलते प्रशासन में भारतीयों की भूमिका लगातार बढ़ती गई। भारतीय आबादी के बहुत सीमित अंश को प्रतिनिधि चुनने के अधिकार भी मिले। फिर भी सभी अंतिम शक्ति व अधिकार अंग्रेज वायसराय व प्रांतीय गवर्नरों के हाथों में ही रहे। प्रथम विश्व युद्ध के बाद विश्व भर में उठी लोकतांत्रिक लहर के प्रभाव से भारतीयों ने भी सार्वभौमिक मताधिकार के आधार पर पूरी तरह से चुनी गई व लोगों के प्रति उत्तरदायी सरकार की माँग की।

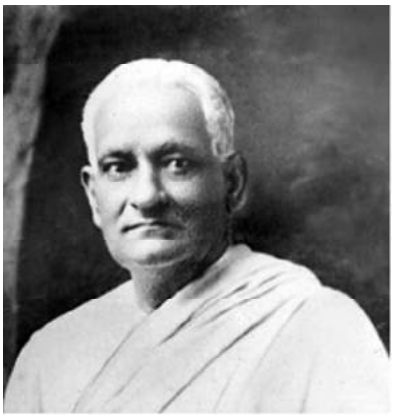

चित्र 12.2 : मोतीलाल नेहरू

सन् 1928 में भारत के सभी राजनैतिक दलों ने मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक समिति गठित की जिसे भारत के लिए एक संविधान का प्रारूप तैयार करना था। समिति ने अपनी रिपोर्ट 10 अगस्त 1928 को पेश की। इस प्रारूप के मुख्य प्रावधान थे– (1) पूर्ण ज़िम्मेदार सरकार यानी सभी वयस्क महिला व पुरुषों द्वारा चुनी गई सरकार (2) अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षण (3) नागरिक अधिकार, जैसे– अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, धार्मिक स्वतंत्रता व पंथ निरपेक्षता, शांतिपूर्ण सभा, सम्मेलन तथा संगठन व संघ बनाने का अधिकार (4) भाषा के आधार पर प्रदेशों का पुनर्गठन। सन् 1928 के बाद भारत में स्वतंत्रता आंदोलन तीव्र होता गया। उसके दबाव को देखते हुए सन् 1935 में ब्रिटिश संसद ने भारत शासन अधिनियम 1935 पारित किया जिसमें भारत में एक सीमित हद तक चुने गए सदनों व उत्तरदायी मंत्रिमंडलों द्वारा शासन का प्रावधान था। इसके कई प्रावधान ऐसे थे जो बाद में स्वतंत्र भारत के संविधान में भी समाविष्ट हुए। उदाहरण के लिए – केन्द्रीय सरकार और प्रांतीय सरकारों के बीच अधिकारों का बँटवारा, विधायिका में बहुमत दल द्वारा मंत्रिमंडल का गठन और सदन के प्रति उत्तरदायी सरकार, दलितों के लिए सीटों का आरक्षण आदि। लेकिन कुछ बातों में सन् 1935 के अधिनियम से स्वतंत्र भारत के संविधान में बहुत फर्क था। सन् 1935 में मताधिकार भारत की एक बहुत सीमित आबादी केवल दस प्रतिशत को ही प्राप्त था। कुछ सीट केवल विशेष धर्म के लोगों के लिए आरक्षित था जहाँ केवल उस धर्म के लोग जैसे– मुसलमान, सिख या ईसाई ही वोट डाल सकते थे। सन् 1935 में भारत को पूरी स्वतंत्रता नहीं दी गई थी। ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त वायसराय या गवर्नर के पास कई महत्वपूर्ण अधिकार थे और वे चुनी गई विधायिका व सरकारों को भंग कर सकते थे या उनके द्वारा पारित कानूनों को अमान्य कर सकते थे। सन् 1935 के संविधान के आधार पर सन् 1937 में प्रांतीय विधान सभाओं के चुनाव हुए और अधिकतर प्रांतों में कांग्रेस दल की सरकारें बनीं लेकिन ये केवल 1939 तक चल पाईं। सन् 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन तेज़ हुआ और जनसामान्य के आक्रोश से स्पष्ट हो गया कि अँग्रेज़ी राज अधिक दिन नहीं चल सकता है।

स्वतंत्र भारत के संविधान और 1935 के अधिनियमों में किस तरह के अन्तर थे? ये अन्तर क्यों थे?

संविधान सभा का गठन और काम के तरीके

YNT71B

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद 1946 में ब्रिटिश सरकार ने लार्ड पेथिक लारेंस की अध्यक्षता में एक समिति यह पता करने के लिए भारत भेजी कि स्वतंत्र भारत में शासन व्यवस्था कैसी होगी और नए संविधान निर्माण की प्रक्रिया क्या होगी? एक प्रबल सुझाव यह था कि सभी वयस्कों के मताधिकार द्वारा संविधान सभा का गठन हो लेकिन बहुत से लोगों को लगा कि इसमें समय अधिक लगेगा और संविधान सभा के गठन को टाला नहीं जा सकता है। समिति ने व्यापक विचार–विमर्श करके सुझाया कि 1935 के नियमों के आधार पर चुनी गईं प्रांतीय विधान सभाओं का उपयोग निर्वाचक मण्डल (प्रतिनिधि चुनने वाले निकाय) के रूप में किया जाए। यानी सीधे नए चुनाव न कराकर पहले से चुनी गई प्रांतीय सभाओं ने प्रतिनिधि चुनकर संविधान सभा का गठन किया।

क्या आपको लगता है कि सार्वभौमिक मताधिकार व प्रत्यक्ष रूप से न चुना गया एक सदन भारत के विविध प्रकार के लोगों की ज़रूरतों व आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व कर सकता था?

सभी तरह के लोगों की राय लेने के लिए ऐसे सदन को फिर किस तरह के प्रयास करने पड़ते?

चित्र 12.3 : संविधान सभा की बैठक।

प्रति 10 लाख की जनसंख्या पर 1 प्रतिनिधि प्रांतों की विधानसभा द्वारा चुना गया। इसमें 11 प्रांतों से 292 प्रतिनिधि थे। रजवाड़ों ने 93 तथा दिल्ली, अजमेर–मारवाड़, कूर्ग व बलूचिस्तान के संभाग से एक–एक प्रतिनिधि सहित सभा के लिए कुल 389 सदस्य अप्रत्यक्ष मतदान प्रणाली से जुलाई 1946 तक चुन लिए गए।

इसी बीच देश के बँटवारे से संबंधित बातचीत भी चल रही थी और बहुत से क्षेत्रों में सांप्रदायिक झगड़े व

तनाव बना था। जब संविधान सभा की प्रथम बैठक 9 दिसम्बर 1946 को हुई तब यह स्पष्ट नहीं था कि भारत एक रहेगा या बँट जाएगा। क्या भारत के अनेक राजा–रजवाड़े भारत में सम्मिलित होंगे या स्वतंत्र राज्य बन जाएँगे? ऐसे माहौल में भारत की संविधान सभा की बैठकें शुरू हुई लेकिन इस पूरे दौर में संविधान निर्माण कार्य चलता रहा। 11 दिसम्बर 1946 को डॉ. राजेन्द्र प्रसाद संविधान सभा के स्थायी अध्यक्ष चुने गए। संविधान निर्माण कार्य को पूर्ण करने के लिए समितियों को गठित किया गया जैसे – संघ संविधान समिति, प्रांतीय संविधान समिति, अल्पसंख्यक और मूलाधिकार समिति, झंडा समिति आदि। इनके प्रतिवेदनों पर पूरे संविधान सभा में चर्चा की जाती थी। फरवरी 1947 में जाकर यह तय हुआ कि भारत का बँटवारा होगा और भारत तथा पाकिस्तान दो अलग देश बनेंगे।

इसे जानें –

विभाजन पश्चात् भारतीय संविधान सभा में कुल सदस्य संख्या 324 रह गई थी जिसमें 235 प्रांतों के व 89 रजवाड़ों के प्रतिनिधि थे।

15 अगस्त 1947 से भारतीय संविधान सभा एक सार्वभौमिक सम्प्रभुत्व सम्पन्न संस्था बन गई और नए राज्य की विधायिका बन गई अर्थात् संविधान निर्माण, विधि निर्माण और शासन का संचालन कार्य, एक साथ इस सभा के सदस्यों का उत्तरदायित्व बन गया।

17 मार्च 1947 को संविधान की मुख्य विशेषताओं के संबंध में ''प्रश्नावली'' सभी प्रांतीय विधान सभा, विधान मंडल और केन्द्रीय विधान मंडल के सदस्यों को उनकी राय लेने के लिए भेजी गई। अल्पसंख्यक एवं मौलिक अधिकार परामर्श समिति की प्रश्नावली पारदर्शिता के साथ समाचार पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से जनता तक चर्चा के लिए संचारित होती थी। समाचार पत्रों तथा आम सभाओं में इन प्रश्नों व विभिन्न प्रस्तावों पर चर्चा और विचार–विमर्श होता था और पत्रों के माध्यम से समितियों तक पहुँचता था। इस तरह संविधान सभा के कार्य जनचर्चा के विषय बनते थे। प्रत्येक अनुच्छेद पर विस्तृत वाद–विवाद हुआ और अक्सर बहुत विरोधाभासी विचार रखे गए लेकिन प्रत्येक सुझाव पर सभी ने गंभीरता से विचार किया और अपनी सहमति या असहमति के सैद्धांतिक आधारों को लिखित रूप में दर्ज किया। इसकी मदद से संविधान के व्यापक सिद्धांतों पर विचार और बहस हो पाई। इस तरह विवाद केवल व्यक्तिगत मतभेदों का रूप लेने से बचे। इन सारी बहसों का विस्तृत विवरण प्रकाशित है और आज इंटरनेट पर उपलब्ध है। संविधान का निर्माण कितनी गहन प्रक्रिया थी और किस गंभीरता के साथ उस पर वाद–विवाद करके सहमति बनाई गई, अग्रांकित तथ्यों से आप समझ सकेंगे।

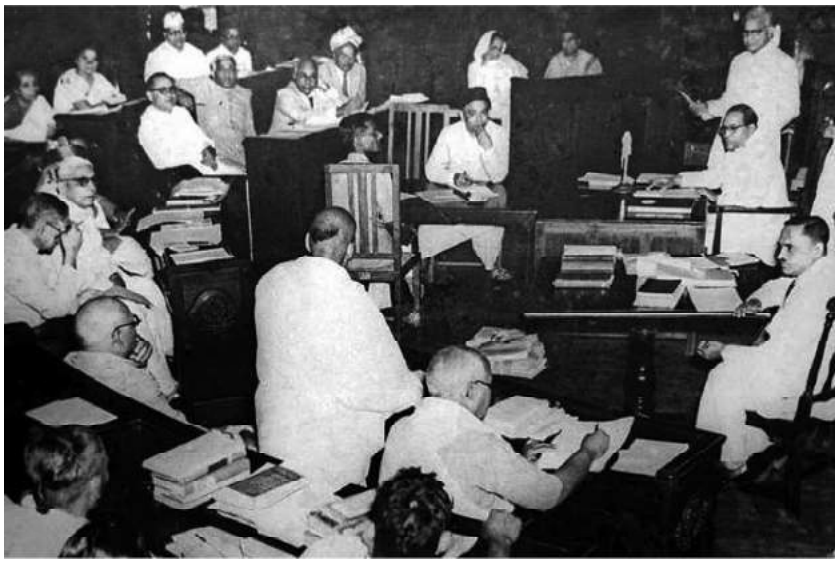

चित्र 12.4 : डॉ. भीमराव अंबेडकर की अध्यक्षता में एक समिति का कामकाज

अप्रैल 1947 के बाद धीरे–धीरे राजा महाराजा अपने प्रतिनिधियों को संविधान सभा में भेजने लगे। 14 से 30 अगस्त 1947 के बीच स्वतंत्रता प्राप्त होने पर संविधान सभा का विशेष अधिवेशन हुआ और संविधान सभा ने स्वयं को सम्प्रभुत्व सम्पन्न मानकर कार्य करना प्रारंभ किया। सर्वप्रथम 29 अगस्त 1947 को संविधान प्रारूप समिति डॉ. भीमराव अम्बेडकर के नेतृत्व में बनाई गई। तब तक राजा–रजवाड़े को भारतीय संघ में सम्मिलित करने की कार्यवाहियाँ भी शुरू हो गईं। दूसरी ओर पाकिस्तान से कश्मीर पर अधिकार के प्रश्न पर युद्ध भी हो रहा था। दोनों देशों में सांप्रदायिक हिंसा भी हो रही थी। भारत–पाकिस्तान विभाजन के लिए सीमा–रेखा का निर्धारण भी हो रहा था।

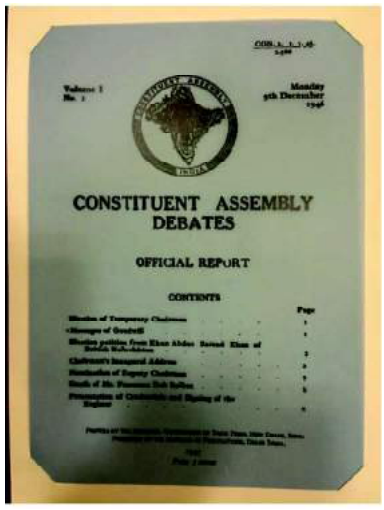

चित्र 12.5 : संविधान सभा चर्चाओं की रिपोर्ट

संविधान सभा की प्रारूप समिति ने 60 देशों के संविधान के विषय विशेषज्ञों से प्राप्त ज्ञान का विश्लेषण कराया। उनके निष्कर्षों पर स्वयं तो विचार किया और प्रांत की विधान सभाओं व जनसामान्य से भी साझा किया ताकि वे भी इन पर अपनी राय दे सकें। गहन विचार के बाद संविधान का एक प्रारूप तैयार किया गया जिसे 25 फरवरी 1948 को प्रस्तुत किया गया। इसे मुद्रित कर प्रकाशित कराया गया और टिप्पणियाँ, सुझाव व आलोचनाएँ आमंत्रित की गईं। इन आलोचनाओं पर विशेष समिति विचार करती थी तथा समस्त निष्कर्ष प्रतिवेदनों के रूप में पुनः प्रकाशित कराए जाते थे।

संविधान सभा : वाद–विवाद

मौलिक अधिकार समिति के प्रस्ताव पर संविधान सभा में चर्चा

मंगलवार 29 अप्रैल 1947

भारत की संविधान सभा की बैठक साढ़े आठ बजे नई दिल्ली के संविधान सभागृह में हुई। माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने बैठक की अध्यक्षता की।

वल्लभ भाई पटेल ने मौलिक अधिकार परामर्श समिति का प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुए कहा – समिति में दो विचारधाराएँ थीं। ...एक विचार यह मानता था कि जितने संभव हों उतने अधिकार शामिल करना चाहिए जो अदालत में सीधे लागू किए जा सकें। इन अधिकारों को लेकर कोई भी नागरिक बिना किसी कठिनाई के सीधे अदालत जा सके और अपने अधिकार प्राप्त कर सके। दूसरी विचारधारा का मत यह था कि मूल अधिकारों को कुछ ऐसी बहुत अनिवार्य बातों तक रखा जाना चाहिए जिन्हें आधारभूत माना जा सके। दोनों विचारधाराओं में काफी बहस हुई और अंत में एक बीच का रास्ता निकाला गया जिसे बहुत अच्छा मध्यम मार्ग माना गया।

दोनों विचारधारा के लोगों ने सिर्फ एक देश के मौलिक अधिकारों का अध्ययन नहीं किया बल्कि दुनिया के लगभग हर देश के मौलिक अधिकारों का अध्ययन किया। वे इस नतीजे पर पहुँचे कि हमें इस प्रतिवेदन में जहाँ तक संभव हो उन अधिकारों को शामिल करना चाहिए जिन्हें उचित माना जा सके। उस पर इस सदन में मतभेद हो सकता है और इस सदन को हर अनुच्छेद पर आलोचनात्मक तरीके से विचार करने, विकल्प सुझाने, संशोधन और निरस्त करने का सुझाव देने का अधिकार है।

श्री रंजन सिंह ठाकुर – महोदय..... मैं जिस बिन्दु का उल्लेख करना चाहता हूँ उसका संबंध धारा 6 से है जो अस्पृश्यता से संबधित है। मैं नहीं समझता कि जाति प्रथा को खत्म किए बिना आप

अस्पृश्यता का उन्मूलन कर सकते हैं। ...अस्पृश्यता जाति प्रथा नामक रोग का प्रतीक होने के सिवाय कुछ नहीं है। जब तक हम जाति प्रथा को पूरी तरह से खत्म नहीं करेंगे तब तक सही तौर से अस्पृश्यता की समस्या पर रोक लगाने का कोई उपयोग नहीं है।

एस.सी. बैनर्जी – अध्यक्ष महोदय असल में अस्पृश्यता को स्पष्ट करने की ज़रूरत है। इस शब्द से हम पिछले 25 सालों से परिचित हैं, फिर भी अभी तक इसके अर्थ को लेकर बहुत भ्रम है। कभी इसका मतलब एक गिलास पानी लेना भर है तो कभी हरिजनों को मंदिरों में प्रवेश देने के अर्थ में दिया गया है। कभी इसका मतलब अन्तर्जातीय भोजन व अन्तर्जातीय विवाह से लिया गया। ...इसलिए जब हम अस्पृश्यता शब्द का इस्तेमाल करने जा रहे हैं तो हमारे दिमाग में यह बात साफ होनी चाहिए कि इसका मतलब क्या है? इस शब्द से वास्तव में क्या अर्थ निकलता है?

मेरा ख्याल है कि हमें अस्पृश्यता और जाति भेद के बीच फर्क नहीं करना चाहिए क्योंकि जैसा कि श्री ठाकुर ने कहा, अस्पृश्यता सिर्फ एक लक्षण है, मूल कारण जाति भेद है और जब तक इसके मूल कारण जाति भेद को नहीं हटाया जाता अस्पृश्यता किसी न किसी रूप में मौजूद रहेगी। जब हमारा देश स्वतंत्र हो जाएगा तो हमें इस बात की अपेक्षा करनी चाहिए कि हर व्यक्ति को समान सामाजिक परिस्थितियाँ उपलब्ध हो सकें।

श्री रोहिणी कुमार चौधरी – अस्पृश्यता की परिभाषा के लिए यह बात स्पष्ट रूप से कही जा सकती है कि अस्पृश्यता का मतलब है धर्म, जाति या जीवनयापन के लिए कानून द्वारा स्वीकार किए गए धंधों को लेकर भेदभाव प्रकट करने वाला कोई काम।

श्री के.एम. मुंशी – महोदय मैं इस संशोधन का विरोध करता हूँ। परिभाषा को इस तरह के शब्दों में लिखा गया है कि यदि इसे मंजूर कर लिया गया तो वह जन्म स्थान या जाति, यहाँ तक कि लिंग के आधार पर किसी भी भेदभाव को अस्पृश्यता बना देगा।

श्री धीरेन्द्र नाथ दत्त – महोदय मुझे ऐसा लगता है कि कोई न कोई परिभाषा तो होनी चाहिए। यहाँ यह कहा जा रहा है कि अस्पृश्यता किसी भी रूप में अपराध है। अस्पृश्यता के मामलों की सुनवाई करने वाले दंड अधिकारियों या न्यायाधीशों को परिभाषा देखनी होगी। एक दंड अधिकारी किसी खास बात को अस्पृश्यता मानेगा जबकि दूसरा न्यायाधीश किसी और बात को अस्पृश्यता मानेगा। इसका परिणाम यह होगा कि अपराधों का फैसला करने में दंड अधिकारियों की कार्यवाही में समानता नहीं होगी। तब न्यायाधीशों के लिए मामलों का फैसला करना बहुत मुश्किल हो जाएगा। इसके अलावा अस्पृश्यता का मतलब अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग होता है। बंगाल में अस्पृश्यता का मतलब कुछ और है जबकि दूसरे प्रांतों में उसका मतलब एकदम अलग होता है।

वल्लभ भाई पटेल – अध्यक्ष महोदय, मैं इस सदन का ध्यान धारा 24 की ओर दिलाना चाहता हूँ, जिसमें कहा गया है कि संघीय विधायिका इस खंड के उन हिस्सों के बारे में कानून बनाएगी जिनके लिए ऐसे कानून की ज़रूरत है, इसलिए मैं यह मानता हूँ कि संघीय विधायिका अस्पृश्यता शब्द की परिभाषा बनाएगी जिससे अदालतें उचित दंड दे सकें।

(इस प्रकार अस्पृश्यता की परिभाषा बनाने का काम भविष्य की विधायिकाओं पर छोड़ दिया गया।)

26 अक्टूबर 1948 को संविधान सभा अध्यक्ष के माध्यम से प्रारूप समस्त सदस्यों को पुनः वितरित किया गया। इनमें संशोधनों के सुझाव, मूल अनुच्छेद एवं धाराओं को सामने के ही पन्ने में मुद्रित किया गया था। इस प्रारूप में 243 अनुच्छेद और 13 अनुसूची थीं। 4 नवम्बर 1948 को डॉ. अम्बेडकर ने संविधान का पूर्ण प्रारूप प्रस्तुत किया और स्पष्ट किया कि 1935 अधिनियम का अधिकांश भाग क्यों लिया गया है तथा भारत में कैसी शासन प्रणाली होनी चाहिए? 15 नवम्बर 1948 को प्रारूप पर खंडवार व धारावार विचार–विमर्श

प्रारंभ हुआ। इसके लिए 11 माह तक लगातार अधिवेशन हुए। 17 सितम्बर 1949 तक 2500 संशोधन प्रस्तावों पर विधिवत तर्क होते रहे। 8 जनवरी 1949 तक 67 अनुच्छेदों पर निर्णय हुआ। इसे प्रथम वाचन कहा गया। इसी प्रकार 16 नवम्बर 1949 तक कुल 386 अनुच्छेदों पर विचार–विमर्श कर सहमति बन पाई। इसे द्वितीय वाचन कहा गया। इसके पहले 17 सितम्बर 1949 को संविधान सभा ने यह प्रस्ताव पारित किया कि ''संविधान का हिन्दी और भारत की अन्य प्रमुख भाषाओं में अनुवाद कराया जाए।'' तब तक मात्र 315 अनुच्छेदों पर विचार कर प्रस्तावना को 6 से 17 अक्टूबर के मध्य अंतिम रूप दिया गया।

चित्र 12.6 संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को संविधान सौंपते हुए डॉ. भीमराव अंबेडकर

17 नवम्बर 1949 को संविधान सभा ने प्रारूप का तीसरा वाचन प्रारंभ किया और प्रारूप के कुल 395 अनुच्छेद, 8 अनुसूची व 22 भागों पर चर्चाएँ की गईं और 26 नवम्बर 1949 को इसे स्वीकृत किया गया। 24 जनवरी 1950 को संविधान की दो पाँडुलिपियाँ संविधान सभा में रखी गईं। ये अँग्रेज़ी व हिन्दी में थी। अँग्रेज़ी में एक मुद्रित प्रति भी प्रस्तुत की गई। अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के निवेदन पर समस्त सदस्यों ने सभी तीनों प्रतियों पर हस्ताक्षर किए। राष्ट्रगान और वंदेमातरम गायन के साथ संविधान सभा का कार्य समाप्त हुआ। संविधान निर्माण में कुल 02 वर्ष 11 माह 18 दिन का समय लगा।

भारत के संविधान का निर्माण भारत के लोगों की ओर से किया गया था लेकिन भारत के लोगों ने संविधान सभा का चुनाव नहीं किया फिर भी इस संविधान को भारत के अधिकांश लोगों ने सहर्ष स्वीकार किया। यह कैसे संभव हुआ होगा?

संविधान निर्माण की चर्चा समाचार पत्र–पत्रिकाओं में तथा आमसभाओं में होती रही और लोग संविधान सभा को ज्ञापन देते रहे लेकिन उन दिनों भारत में केवल 27 प्रतिशत पुरुष और 9 प्रतिशत महिलाएँ साक्षर थीं। निरक्षर महिलाओं व पुरुषों के विचार संविधान निर्माताओं तक कैसे और किस हद तक पहुँचे होंगे?

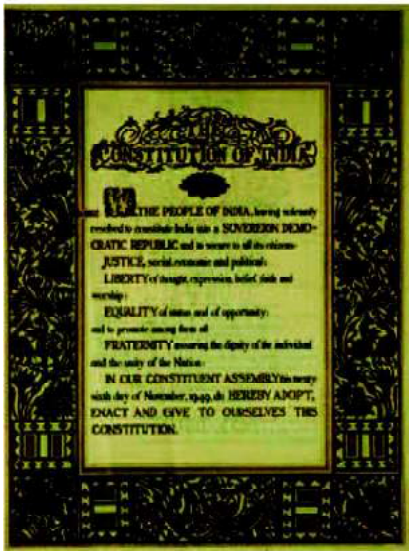

चित्र 12.7. भारतीय संविधान की प्रस्तावना – मूल प्रति का चित्र

1.2 भारतीय संविधान की उद्देशिका में दिए गए मूल्य व आदर्श

हमारा संविधान एक संक्षिप्त उद्देशिका से शुरू होता है। संक्षिप्त होने पर भी यह अत्यंत महत्वपूर्ण है। संविधान सभा के तीसरे अधिवेशन में 13 दिसम्बर 1946 को पं. जवाहरलाल नेहरू ने उद्देश्य प्रस्ताव प्रस्तुत किया जो अंततः 26 नवंबर 1949 को पारित हुआ। 3 जनवरी 1977 को इसका संशोधन किया गया जिसमें कुछ महत्वपूर्ण विचार जोड़े गए।

संविधान की उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व–सम्पन्न, समाजवादी, पंथ निरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय,

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म

और उपासना की स्वतंत्रता,

प्रतिष्ठा और अवसर की समता

प्राप्त कराने के लिए

तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और

राष्ट्र की एकता और अखण्डता

सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए

दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई.
(मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत् दो हज़ार छह विक्रमी) को एतद द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

इस उद्देशिका के महत्व पर टिप्पणी करते हुए पं. जवाहरलाल नेहरू ने कहा था, ''प्रस्तावना होते हुए भी यह प्रस्तावना से बहुत अधिक है। यह एक घोषणा पत्र है, यह एक दृढ़ निश्चय है, यह एक प्रतिज्ञा और दायित्व है और हमें विश्वास है कि यह एक व्रत है। यह प्रस्ताव कुछ शब्दों में विश्व को बताना चाहता है कि हमने इतने दिनों किस बात की अभिलाषा रखी? हमारा स्वप्न क्या था?'' यानी कि इन शब्दों में हमारे राष्ट्रीय आंदोलन के उद्देश्य, हमारे देश के लोग आगे क्या प्राप्त करने के लिए प्रयास करेंगे तथा हम किस तरह का राष्ट्र और राज्य स्थापित करना चाहते हैं – यह सब इसमें कहा गया है।

मूल्य एवं आदर्श – उद्देशिका के समस्त शब्द भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के सेनानियों और जनता की वे अभिलाषाएँ हैं जो भारतीय पुनर्जागरण, स्वदेशी आंदोलन, असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा, भारत छोड़ो आंदोलन, जंगल सत्याग्रह, जाति प्रथा उन्मूलन आंदोलन, मज़दूरों व किसानों के आंदोलन, महिला अधिकार आंदोलन और आज़ाद हिन्द फौज की सरकार सहित भारत के विभिन्न सामाजिक व राजनैतिक आंदोलनों की भावनाएँ थीं। इसमें रूसी क्राँति से आर्थिक समानता व न्याय, फ्रांसीसी क्राँति से स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व तथा अमेरिकी क्राँति से राजनैतिक न्याय, स्वतंत्रता व व्यक्तित्व स्वतंत्रता के साथ मानव

गरिमा का भाव लिया गया है। आईए उद्देशिका के मूल्य व आदर्श को विस्तार से समझें –

"***हम भारत के लोग...*** *इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।*" यह वाक्यांश We the people of India समस्त भारत के स्वतंत्र नागरिकों का प्रतिनिधित्व करता है। हमें यह संविधान किसी राजा, सरकार या विदेशी शासक ने नहीं दिया है वरन् समस्त भारत की जनता ने मिलकर अपने आप के लिए बनाया है। अतः जनता ही इस देश की सर्वोच्च शक्ति है। यह वाक्य तीन अर्थ स्पष्ट करता है –

1. **संविधान के द्वारा हम भारत के लोगों के लोकतंत्र की स्थापना करते हैं।**
2. **संविधान के रचनाकार जनता और जनता के प्रतिनिधि हैं और यह संविधान जनता की इच्छा का परिणाम है।**
3. **लोकतंत्र और संविधान की अंतिम सम्प्रभुत्व शक्ति भारत की जनता में निहित है।**

अंगीकृत – मान्यता देना

अधिनियमित – कानून का स्वरूप देना

आत्मार्पित – अपने आप को देना

डॉ. अम्बेडकर के शब्दों में – 'प्रस्तावना यह स्पष्ट कर देती है कि इस संविधान का आधार जनता है। इसमें निहित प्राधिकार और प्रभुत्व सब जनता से प्राप्त हुए हैं। जनता ही इसे अधिनियमित, अंगीकृत व आत्मार्पित करती है।'

संविधान सभा का चुनाव सार्वभौमिक मताधिकार के आधार पर नहीं हुआ था और उसे आबादी के केवल दस प्रतिशत लोगों द्वारा चुनी गई विधायिकाओं ने चुना था। तो क्या आपको यह कथन कि 'हम भारत के लोग' इस संविधान को बना रहे हैं उचित लगता है? संविधान सभा ने किन तरीकों से यह सुनिश्चित किया कि भारत के सभी लोग संविधान निर्माण में सम्मिलित हों?

प्रभुत्व सम्पन्न – यह किसी बाह्य शक्ति (जैसे कोई दूसरा देश) से स्वतंत्र व सर्वोच्च शक्ति है। देश के अन्दर भी संप्रभुत्व युक्त राज्य के निर्णय सर्वोपरि होते हैं क्योंकि यह माना जाता है कि उसके पीछे देश के सभी निवासियों की सहमति है। विदेश नीति हो या आँतरिक नीति, जनता का राज्य 'स्वनियंत्रित एवं स्वतंत्र' है। उनके ऊपर अन्य कोई शक्ति हस्तक्षेप नहीं कर सकती क्योंकि भारत एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न राज्य है। यह कथन महत्वपूर्ण था क्योंकि भारत अँग्रेज़ों की हुकूमत से आज़ाद हो रहा था।

इनमें से किसके पास संप्रभुता है, कारण सहित बताएँ –

संसद, सर्वोच्च न्यायालय, प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति, भारत के लोग, छत्तीसगढ़ की विधान सभा, मुख्यमंत्री।

समाजवादी – यह अवधारणा 1977 में जोड़ी गई थी। इसका आशय है कि भारत अपने समस्त नागरिकों के बीच सभी प्रकार की सामाजिक व आर्थिक असमानताओं को दूर करने का प्रयास करेगा और सभी संसाधनों का उपयोग सार्वजनिक हित में किया जाएगा न कि किसी के निजी हित में।

इनमें से समाजवाद के निकट क्या है और क्या नहीं –

भारतीय रेल, कल्लूलाल एंड चम्पालाल उत्खनन कंपनी, मनरेगा, सरकारी अस्पताल, ग्लोब इंटरनेशनल स्कूल, रेशम उत्पादक सहकारी समिति, महिला व पुरुष को समान वेतन।

पंथनिरपेक्ष – भारत का राज्य किसी विशेष धर्म या पंथ के अनुसार नहीं चलेगा न ही उसका झुकाव किसी धर्म या पंथ के प्रति होगा और न ही वह धर्म के आधार पर किसी से भेदभाव करेगा। भारत के लोग विभिन्न धर्म व पंथों में आस्था रखते हैं व कई लोग ऐसे भी होते हैं जो किसी धर्म को नहीं मानते हैं या नास्तिक होते हैं। राज्य इन सभी के साथ एक सा व्यवहार करेगा और सभी को अपना धर्म मानने या न मानने की स्वतंत्रता रहेगी। राज्य सामान्यतया किसी धर्म के आंतरिक मामलों में दखल नहीं देगा मगर जहाँ सार्वजनिक शान्ति व्यवस्था या नैतिकता या स्वास्थ्य प्रभावित होता है वहाँ राज्य हस्तक्षेप भी कर सकता है। उदाहरण के लिए– सतीप्रथा, नरबलि प्रथा या विवाह की उम्र आदि में सरकार कानून बना सकती है।

भारतीय समाज के संदर्भ में पंथनिरपेक्षता का यह भी अर्थ निकाला जाता है कि एक बहुधर्मी व बहुपंथी देश के नागरिक होने के नाते वे सभी धर्मों व आस्थाओं के प्रति सम्मान और सहिष्णुता का व्यवहार करेंगे। अपने धर्म का प्रचार करते समय या किसी भी धर्म की विवेचना करते समय दूसरे धर्म के प्रति आदर का भाव रखेंगे और किसी के प्रति घृणा की भावना नहीं रखेंगे।

आप इनमें से किसको पंथनिरपेक्ष नहीं मानेंगे –

सरकारी दफ्तर में पूजापाठ का आयोजन, सती प्रथा व अस्पृश्यता उन्मूलन कानून बनाना, राष्ट्रपति किसी धर्मविशेष का ही हो ऐसा कानून बनाना, शहर में धार्मिक जुलूसों पर पाबंदी लगाना, सरकारी नौकरियों में सभी धर्म के लोगों को समान अवसर देना, सरकारी दफ्तरों में सर्वधर्म प्रार्थना का आयोजन, सभी धर्मों का अध्ययन करना, किसी धर्मविशेष के लोगों को अपना घर किराए पर न देना, यह मानना कि मेरा धर्म ही सबसे अच्छा है, अपने धर्म का विधिवत पालन करना, विभिन्न धर्म के लोगों से दोस्ती करना।

लोकतंत्रात्मक – वह शासन प्रणाली जिसमें समस्त शक्तियाँ जनता से उत्पन्न होती हैं। निश्चित अवधि में चुनाव के द्वारा सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के माध्यम से जनता अपने प्रतिनिधियों का चयन करती है और जनप्रतिनिधि कानून के अनुसार उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करते हैं। बहुदलीय प्रणाली, विधि या कानून का शासन, स्वतंत्र–निष्पक्ष न्यायपालिका और निष्पक्ष जनमत निर्माण के साधन, जैसे– स्वतंत्र समाचार पत्र और टीवी चैनल लोकतंत्र के घटक हैं। वह व्यवस्था जहाँ शासन–प्रशासन के हर क्षेत्र में जनभागीदारी हो, लोकतंत्र कहलाती है।

गणराज्य – वह राज्य जिसमें शासन का प्रमुख, जैसे कि राष्ट्रपति, वंशानुगत न होकर किसी चुनाव की प्रक्रिया से बनता है, वह गणराज्य कहलाता है। भारत व पाकिस्तान के राष्ट्रपति चुनाव से बनते हैं जबकि ब्रिटेन, जापान जैसे अनेक देशों में शासन प्रमुख ''वंशानुगत राजपरिवार का मुखिया'' होता है। अतः वहाँ लोकतंत्र और संविधान है मगर गणराज्य नहीं। वे संवैधानिक राजशाही हैं। गणराज्य में जन प्रतिनिधि, प्रथम नागरिक व साधारण नागरिक व्यवहार में कानून के समक्ष समान होता है जबकि राजशाही में राजा का स्थान विशेष होता है।

म्यांमार में एक लंबे समय तक सेना प्रमुख ही राष्ट्रपति बनते थे। क्या वह लोकतांत्रिक था? क्या वह गणराज्य था?

हमारे संविधान में सर्वप्रथम यह कहा गया है कि हम किस तरह का राज्य स्थापित करना चाहते हैं – जो पूरी तरह स्वतंत्र हो (सम्पूर्ण प्रभुत्व–सम्पन्न), जिसमें संसाधनों का उपयोग सार्वजनिक हित में हो और असमानता न हो (समाजवादी), जो किसी धर्म पर आधारित न हो (पंथ निरपेक्ष), जिसमें शासन लोगों की इच्छानुसार चले (लोकतंत्रात्मक) जिसका शासन प्रमुख वंशानुगत न हो (गणराज्य)। इसके बाद यह बताया गया है कि यह राज्य हमने किसलिए बनाया – उसके सभी नागरिकों को न्याय, स्वतंत्रता, समानता दिलाने तथा उनके बीच बंधुत्व या भाईचारा मज़बूत करने के लिए।

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय – न्याय से तात्पर्य है कि जिसका जो हक या अधिकार है, वह उसे मिले और अगर कोई व्यक्ति या शासन उसका उल्लंघन करता है तो वह दण्डित हो। अगर किसी को उसकी गरीबी, राजनैतिक विचार, जाति, धर्म या लिंग के कारण अपने अधिकारों से वंचित रहना पड़ता है, तो गणराज्य का दायित्व है कि उसके अधिकार उसे दिलवाए और ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित करे ताकि इन कारणों से कोई अपना अधिकार न खो पाए। न्याय गहरे रूप में समानता और समान अवसर की अवधारणाओं से जुड़ा हुआ है। अतः यहाँ केवल न्यायालय में मिलने वाले कानूनी न्याय की बात नहीं की गई है। वास्तव में न्याय एक दार्शनिक अवधारणा है जिसे परिभाषित करना कठिन है। किसी का अधिकार क्या हो, यह किस आधार पर निर्धारित करें? इन पर कई मत हो सकते हैं और नए विचार उभर सकते हैं। इस कारण समय–समय पर न्याय की अवधारणा पर पुनर्विचार करके नीति बनाना भी गणराज्य से अपेक्षित है।

मुन्ना एक आदिवासी लड़का है जो पायलट बनना चाहता है लेकिन उसके क्षेत्र में इसके लिए ज़रूरी शिक्षा की व्यवस्था नहीं है। उसे दूर किसी महानगर में जाकर इसकी शिक्षा हासिल करनी होगी। मगर मुन्ना के पास इसके लिए आवश्यक धन नहीं है। क्या यह एक न्यायपूर्ण स्थिति है?

प्रमिला और उसके पति दोनों एक कम्प्यूटर कंपनी में बड़े पद पर काम करते हैं। जब उनकी बच्ची हुई तो परिवारवालों ने प्रमिला पर दबाव डाला कि वह अपनी नौकरी छोड़ दे ताकि बच्ची की देखभाल ठीक से हो सके। क्या यह एक न्यायपूर्ण स्थिति है?

हनीफ का विचार है कि लोगों को विदेशी सामान उपयोग नहीं करना चाहिए और केवल स्वदेशी चीज़ों को खरीदना चाहिए और वह इस विचार को लेखों व भाषणों के माध्यम से लोगों तक पहुँचाता है। लेकिन जब भी वह नौकरी के लिए आवेदन करता है उसे यह कहकर लौटा दिया जाता है कि आपके विचार अतिवादी हैं। क्या यह एक न्यायपूर्ण स्थिति है?

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म व उपासना की स्वतंत्रता – स्वतंत्रता का अर्थ होता है स्वयं निर्णय लेना और अपने जीवन को संचालित करना, किसी और का कहा मानने या उसके अनुसार चलने पर बाध्य न होना।

भारत के हर नागरिक को खुद सोचकर अपने विचार बनाने, उनके अनुरूप जीने तथा उन्हें खुलकर दूसरों को बताने की स्वतंत्रता है। उन्हें किसी की बात मानने या न मानने, किसी भी धर्म को मानने या न मानने तथा किसी भी तरीके से उपासना करने या न करने का अधिकार होगा। नागरिक कैसे, किस तरह अपने विचारों को अभिव्यक्त करें और सोचें, अपने विचारों पर किस तरह अमल करें, इस पर कोई अनुचित पाबंदी नहीं है। इसकी केवल एक शर्त है कि इससे दूसरे नागरिकों की स्वतंत्रता के अधिकारों का उल्लंघन न हो यानी किसी अन्य व्यक्ति को बाध्य करने का प्रयास न करें।

न्याय की तरह स्वतंत्रता भी एक दार्शनिक अवधारणा है जिसे कानूनी रूप में परिभाषित करना पर्याप्त नहीं है। स्वतंत्रता का अर्थ यह भी है कि हर व्यक्ति स्वयं के निर्णय लेने के लिए सक्षम बने। उसे अपने परिवार, समाज, बड़े–बुजुर्ग, पति या पत्नि या शासन के प्रभाव से मुक्त होकर सोचने व निर्णय लेने के अवसर मिलें और उसमें यह सामर्थ्य भी हो। इसी के माध्यम से हर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को उभार सकता है और अपने आपको विकसित कर सकता है। क्या इस स्वतंत्रता की कोई सीमा हो सकती है? यदि हाँ, तो वह क्या हो, किस प्रकार लागू हो – इन बातों पर भी कई विचार हैं। इस बारे में आम समझ भी समय के साथ विकसित होती रही है।

छत्तीसगढ़ की 40 प्रतिशत महिलाएँ निरक्षर हैं। इससे उनकी स्वतंत्रता किस तरह प्रभावित होगी?

लोक रक्षा पार्टी के लोग रात को शहर में एक आमसभा करना चाहते हैं और वे यह भी चाहते हैं कि सारे सड़कों पर लाउडस्पीकर लगाएँ। शहर के थानेदार ने उन्हें अनुमति नहीं दी। क्या यह उनकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन है?

प्रतिष्ठा और अवसर की समता – यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि संविधान दो तरह की समता की बात कर रहा है, प्रतिष्ठा और अवसर की। प्रतिष्ठा की समानता भारत में कई मायनों में अत्यधिक महत्वपूर्ण रही है। सदियों से हमारे समाज में पितृसत्ता, जातिवाद और सामन्तवाद के चलते हैसियत या प्रतिष्ठा में बहुत असमानता थी। यहाँ तक कि कुछ लोगों को अस्पृश्य भी माना गया और इस कारण वे अनेक अधिकारों से वंचित रहे। दूसरी ओर, समाज में कई श्रेणियाँ बनी हुईं थीं जिनको विशेषाधिकार प्राप्त थे। उदाहरण के लिए, राज परिवार और उनसे जुड़े लोगों एवं ऊँची जाति के लोगों को आम लोगों से अलग माना जाता था। इनके अलावा कई लोग जो अँग्रेज़ी शासन के वफादार थे, उन्हें शासन की ओर से विशिष्ट दर्जा प्राप्त था। इन असमानताओं को खत्म करने की बात की गई ताकि हर व्यक्ति अपना मनचाहा जीवन जी सके और अपने मनचाहे काम कर पाए। इसके लिए दो तरह के कदम उठाए गए –

पहला, कानून की दृष्टि में सबको समान दर्जा दिया गया। यानी राजा हो या भिखारी, दलित हो या सवर्ण, महिला हो या पुरुष, सब के लिए एक ही कानून होगा।

दूसरा, सार्वजनिक जीवन में लिंग, जाति, धर्म, भाषा आदि के आधार पर भेदभाव को खत्म किया गया। यानी कोई भी नागरिक भारत के किसी भी सार्वजनिक पद को हासिल कर सकता है एवं सार्वजनिक सुविधाओं का उपयोग कर सकता है।

संविधान सबको अवसर की समानता दिए जाने की बात कर रहा है। इसका तात्पर्य यह है कि समाज में किसी भी अवस्था को प्राप्त करने के लिए सबको न केवल समान अधिकार रहेगा बल्कि उसे प्राप्त करने के लिए समान अवसर भी मिलेंगे। यानी उस अवस्था को प्राप्त करने के लिए ज़रूरी अर्हताओं को हासिल करने में भी समानता लाई जाएगी। उदाहरण के लिए अगर न्यायाधीश पद के लिए कुछ अर्हताएं तय हैं (जैसे एल.एल.बी. डिग्री व वकालत का अनुभव) तो जो कोई इन्हें प्राप्त करता है, वह न्यायाधीश पद के लिए आवेदन दे सकता है साथ ही यह शिक्षा और वकालत का अनुभव भारत के हर नागरिक के लिए खुला है। लिंग, जाति, धर्म या भाषा के आधार पर किसी पर पाबंदी नहीं है।

न्याय और स्वतंत्रता की तरह समता भी एक दार्शनिक अवधारणा है। हर इन्सान को, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, अमीर हो या गरीब, शारीरिक रूप से पूर्ण हो या सक्षम, बच्चा हो या वृद्ध, किसी भी धर्म, जाति या क्षेत्र का हो, उसे एक व्यक्ति के रूप में समान आदर और सम्मान मिले और अपने मर्जी अनुसार जीवन जीने के अवसर मिले। उल्लेखनीय है कि संविधान में हर तरह की समता (खासकर आर्थिक समानता) की बात नहीं की गई है। इसमें प्रतिष्ठा और अवसर की समानता की बात की गई है।

क्या यह संवैधानिक मूल्य के विरुद्ध है? विचार कीजिए।

मीना गाँव की सबसे अधिक पढ़ी–लिखी महिला है और इस कारण गाँव में उसकी सबसे ऊँची प्रतिष्ठा है।

गाँववालों ने तय किया कि महेशजी गाँव के गौटिया परिवार के हैं और इस कारण वे ही शाला समिति के अध्यक्ष बनेंगे।

सानिया देख नहीं सकती है मगर बहुत प्रयास करके बी.एड. उत्तीर्ण हो गई। लेकिन कोई स्कूल उसे शिक्षिका की नौकरी देने के लिए तैयार नहीं है क्योंकि वह दृष्टि बाधित है।

व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता – इससे पहले कही गई बातें जैसे स्वतंत्रता या समानता व्यक्तियों के लिए थीं। ये स्वतंत्रता और समानता प्राप्त व्यक्ति आपस में विरोध में न खड़े हों, एक साथ रहें और अपनी सामूहिकता को बनाए रखें– इसके लिए बन्धुता की बात कही गई है। हम ऐसा समाज नहीं बनाना चाहते हैं जहाँ केवल हर व्यक्ति अपनी ही बात सोचे और केवल व्यक्तिवाद को आदर्श बनाए। हम यह भी चाहते हैं कि वे आपस में भाईचारा रखें, सहयोग करें और एक साझे राष्ट्र का निर्माण करें। लेकिन यह ऐसा भी राष्ट्र नहीं होगा जिसमें व्यक्ति का कोई स्थान न हो या जिसमें केवल राष्ट्र को सर्वोपरि माना जाए। यह ऐसा राष्ट्र बनेगा जिसमें व्यक्ति की गरिमा को बनाए रखा जाएगा।

संविधान की उद्देशिका में हमारे संवैधानिक मूल्य अंकित हैं जिनके आधार पर न केवल हमारे शासन को संचालित करना है बल्कि जिन्हें देश के हर नागरिक को भी अपने जीवन में निभाना है।

अभ्यास

1. संविधान में मुख्य रूप से किन विषयों को सम्मिलित किया जाता है?
2. किसी देश के लिए कानून कौन बनाएगा और कैसे, इसे संविधान में दर्ज करना क्यों ज़रूरी है?
3. भारत और नेपाल के संविधान निर्माण के संदर्भ में क्या अन्तर और समानता है?
4. संविधान सभा का गठन किस सीमा तक लोकतांत्रिक था?
5. संविधान सभा ने संविधान निर्माण में लोगों की भागीदारी को बढ़ाने के लिए क्या कदम उठाए?
6. संविधान की उद्देशिका का हमारे जीवन में क्या महत्व है?
7. आपको संविधान के मूल सिद्धांतों में से कौन सा सबसे महत्वपूर्ण लगा? कारण सहित समझाएँ।